प्रकाशक :

जैन विश्व भारती

लाडनूं-341306 (राजस्थान)।

प्रथम आवृत्ति : १९७८, ६०००

द्वितीयावृत्ति : मई, १९८०, १०००९

मूल्य : एक रुपया मात्र

मुद्रक अजमेरा प्रिंटिंग वर्क्स

जयपुर-302003

प्रकाशकीय

इस वर्ष जैन विश्व भारती, लाडनूं द्वारा जैन तत्त्व विद्या के ज्ञान-प्रदान के लिए तात्त्विक परीक्षा का क्रम चालू किया गया, जिसमें लगभग २५४३ छात्र-छात्राओं ने भाग लिया। इस परीक्षा क्रम को स्थायी रूप देने की मांग चारों ओर से प्राप्त हुई। हजारों विद्यार्थियों के लाभान्वित होने की संभावना को देखकर इस विषय में गंभीरता से सोचा गया।

परीक्षा क्रम को सुव्यवस्थित करने के लिए पाठ्यक्रम पर भी विचार किया गया और फलस्वरूप उसमें आवश्यक परिवर्तन किए गए। निर्धारित नवीन पाठ्य पुस्तकें सरलता-पूर्वक सस्ते मूल्य पर विद्यार्थियों को प्राप्त हो सके ऐसी योजना का निर्माण किया गया है। यह निश्चय हुआ है कि पाठ्य-पुस्तकें संस्थान द्वारा ही मुद्रित कराली जाएं ताकि समय पर उनको प्राप्ति में कठिनाई न आ पाए। पाठ्यक्रम की प्रस्तुत पुस्तक इसी चिन्तन के फलस्वरूप प्रकाशित की जा रही है।

प्रस्तुत पुस्तक 'जैन विद्या प्रवेशिका', प्रथम वर्ष के लिए निर्धारित है। इस पुस्तक में अधिकांश पाठ मुनि श्री नथमलजी (युवाचार्य श्री महाप्रज्ञजी) द्वारा लिखित धर्मबोध भाग-१ से तथा कुछ पाठ मुनिश्री किशनलालजी द्वारा सम्पादित आत्म-बोध भाग-१ से संकलित हैं। कुछ पाठ नए हैं। धर्मबोध का निर्माण आज से ३० वर्ष पूर्व आचार्यप्रवर के सान्निध्य में

हुआ था। ये पाठ सहज, सरल व विद्यार्थियों के लिए उपयोगी समझकर इस पुस्तक में संकलित कर लिए गए हैं। आशा है, विद्यार्थी इस पुस्तक से अपने ज्ञान की वृद्धि करेंगे।

जैन विश्व भारती, —श्रीचन्द रामपुरिया
लाडनूं कुलपति
२०३५, चैत्र शुक्ला, त्रयोदशी।

द्वितीय संस्करण

द्वितीय संस्करण संशोधन एवं सामान्य परिवर्द्धन के साथ प्रकाशित हो रहा है। यह परम प्रसन्नता का विषय है कि जैन विद्या के अध्ययन की ओर बालक-बालिकाओं की रुचि बढ़ रही है और प्रतिवर्ष परीक्षार्थियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। सन् १९७८ में जहां परीक्षार्थी-संख्या ५४६२ थी वह १९७९ में बढ़कर ७०९३ हो गयी। आगामी वर्ष में और भी अधिक संख्या में विद्यार्थी सम्मिलित होंगे, ऐसा विश्वास है।

लाडनूं, —गोपीचन्द चोपड़ा
२०३७, चैत्र शुक्ला, त्रयोदशी। कुल सचिव

अनुक्रम

कथा-बोध

: १ :

नमस्कार-महामन्त्र

णमो अरहन्ताणं	अरहन्तों को मेरा नमस्कार हो
णमो सिद्धाणं	सिद्धों को मेरा नमस्कार हो
णमो आयरियाणं	धर्माचार्यों को मेरा नमस्कार हो
णमो उवज्झायाणं	उपाध्यायों को मेरा नमस्कार हो
णमो लोए सव्वसाहूणं	लोक के सब साधुओं को मेरा नमस्कार हो।

मन्त्र-महत्त्व

ो पंच णमुक्कारो, सव्व पावपणासणो।
ंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥

यह नमस्कार-महामन्त्र सब पापों का नाश करने
सब मंगलों में पहला मंगल है।

महामन्त्र जैन धर्म का सबसे प्राचीन मंत्र है।
मानते हैं। इस प्रातःस्मरणीय महामन्त्र में
प को नहीं, किन्तु महान् आत्माओं को
ा है। वे महान् आत्माएं पांच प्रकार की
सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

इस महामन्त्र में पांच पद और पैंतीस अक्षर हैं। पहले पद में सात, दूसरे पद में पांच, तीसरे पद में सात, चौथे पद में सात और पांचवें में नौ अक्षर हैं। अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु, ये पांचों पञ्च-परमेष्ठी कहलाते हैं।

प्रश्न :

१. नमस्कार-महामन्त्र में किन-किन को नमस्कार किया गया है ?
२. इस मन्त्र के पद और अक्षर कितने हैं ?
३. नमस्कार मन्त्र का क्या महत्त्व है ?

वन्दन-पाठ

तिक्खुत्तो	तीन वार
आयाहिणं	दाईं से वाईं ओर
पयाहिणं	प्रदक्षिणा
करेमि	करता हूं।
वंदामि	स्तुति करता हूं।
नमंसामि	नमस्कार करता हूं।
सक्कारेमि	सत्कार करता हूं।
सम्माणेमि	सम्मान करता हूं।
कल्लाणं	(आप) कल्याणकारी हैं।
मंगलं	मंगलकारी हैं।
देवयं	धर्मदेव हैं।
चेइयं	ज्ञानवान् हैं।
पज्जुवासामि	(मैं आपकी) उपासना करता हूं।
मत्यएण वंदामि	मस्तक झुकाकर वन्दना करता हूं।

वन्दन-विधि

गुरु को वन्दन करना हमारा परम कर्त्तव्य है। इससे मन पवित्र होता है। पवित्र मन व्यक्ति को महान् बनाता है। वन्दना के

प्रश्न :

१. वन्दन-पाठ लिखो।
२. प्रदक्षिणा कैसे और कितनी बार करनी चाहिए ?
३. इस पाठ में आए हुए 'चेइयं' शब्द का क्या अर्थ है ?
४. वन्दना करने की विधि क्या है ?

सामायिक-पाठ

जिस व्रत से समता का लाभ होता है, उसका नाम सामायिक व्रत है। समता का अर्थ है—सबके प्रति समभाव। समता के संकल्प को स्वीकार करने के लिए सामायिक पाठ पढ़ा जाता है। जैन धर्म में सामायिक का बहुत महत्त्व माना जाता है, इसलिए बच्चों को सामायिक का अभ्यास करना चाहिए।

करेमि भंते सामाइयं	भगवन् ! मैं सामायिक करता हूं।
सावज्जं जोगं	सावद्य योग (पापकारी प्रवृत्ति) का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता हूं।
जाव-नियमं	सामायिक का जितना काल है
(मुहुत्तं एगं)	(एक मुहूर्त)
पज्जुवासामि	पालन करता हूं।
दुविहं तिविहेणं	दो करण तीन योग से
न करेमि, न कारवेमि	न करूंगा, न कराऊंगा
मणसा, वयसा, कायसा	मन से, वचन से, शरीर से
तस्स	उन पूर्वकृत सावद्य योगों से
भन्ते !	भगवन् !
पडिक्कमामि	निवृत्त होता हूं।
निंदामि	उनकी निन्दा करता हूं।

[illegible]

प्रश्न :

१. वन्दन-पाठ लिखो।
२. प्रदक्षिणा कैसे और कितनी बार करनी चाहिए?
३. इस पाठ में आए हुए 'चेइयं, शब्द का क्या अर्थ है?
४. वन्दना करने की विधि क्या है?

: ३ :

सामायिक-पाठ

जिस व्रत से समता का लाभ होता है, उसका नाम सामायिक व्रत है। समता का अर्थ है—सबके प्रति समभाव। समता के संकल्प को स्वीकार करने के लिए सामायिक पाठ पढ़ा जाता है। जैन धर्म में सामायिक का बहुत महत्व माना जाता है, इसलिए बच्चों को सामायिक का अभ्यास करना चाहिए।

करेमि भंते सामाइयं	भगवन् ! मैं सामायिक करता हूं।
सावज्जं जोगं	सावद्य योग (पापकारी प्रवृत्ति) का
पच्चक्खामि	प्रत्याख्यान करता हूं।
जाव-नियमं	सामायिक का जितना काल है
(मुहुत्तं एगं)	(एक मुहूर्त)
पज्जुवासामि	पालन करता हूं।
दुविहं तिविहेणं	दो करण तीन योग से
न करेमि, न कारवेमि	न करूंगा, न कराऊंगा
मणसा, वयसा, कायसा	मन से, वचन से, शरीर से
तस्स	उन पूर्वकृत सावद्य योगों से
भन्ते !	भगवन् !
पडिक्कमामि	निवृत्त होता हूं।
निंदामि	उनकी निन्दा करता हूं।

गरिहामि	उनकी गुरु-साक्षी से गर्हा करता हूं।
अप्पाणं वोसिरामि	आत्मा को पाप से दूर करता हूं।

सामायिक आलोचना

नौवें सामायिक व्रत में जो कोई अतिचार (दोष) लगा हो तो मैं उसकी आलोचना करता हूं/करती हूं—

(१) मन की सावद्य प्रवृत्ति की हो।
(२) वचन की सावद्य प्रवृत्ति की हो।
(३) शरीर की सावद्य प्रवृत्ति की हो।
(४) सामायिक के नियमों का पूरा पालन न किया हो।
(५) अवधि से पहले सामायिक को पूरा किया हो। (सामायिक का काल एक मुहूर्त-४८ मिनिट का होता है)

तस्स मिच्छामि दुक्कडं—इनसे लगे मेरे पाप मिथ्या हों-निष्फल हों।

प्रश्न :

१. सामायिक में किस बात का त्याग किया जाता है ?
२. सामायिक कितने करण-योग से की जाती है ?
३. सामायिक का काल-मान कितना है ?
४. सामायिक के कितने अतिचार हैं ?
५. सामायिक-पाठ को शुद्ध लिखो।

: ४ :

मंगल-पाठ

प्रत्येक प्राणी मंगल की कामना करता है। वह उसके लिए प्रयत्न भी करता है, परन्तु सच्चे मंगल को बहुत कम व्यक्ति को पहचानते हैं। साधारण लोग नारियल, दूब, चावल आदि को मंगल मानते हैं। ये लौकिक मंगल कहलाते हैं। अध्यात्म-जगत् में अरहन्त, सिद्ध, साधु और धर्म को मंगल कहा जाता है। वे ही लोक में उत्तम हैं। जैन धर्म में मंगल-पाठ को नमस्कार मंत्र की तरह ही मंत्र माना जाता है इसलिए बच्चों को मंगल-पाठ कण्ठस्थ रखना चाहिए। इनकी शरण को स्वीकार करना चाहिए।

चत्तारि मंगलं : मंगल चार हैं—
अरहंता मंगलं : अरहंत मंगल हैं,
सिद्धा मंगलं : सिद्ध मंगल हैं,
साहू मंगलं : साधु मंगल हैं,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं : केवलि-भाषित धर्म मंगल है।

चत्तारि लोगुत्तमा : चार लोक में उत्तम हैं–
अरहंता लोगुत्तमा : अरहंत लोक में उत्तम हैं,
सिद्धा लोगुत्तमा : सिद्ध लोक में उत्तम हैं,
साहू लोगुत्तमा : साधु लोक में उत्तम हैं,
केवलि-पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो : केवलि भाषित धर्म लोक में उत्तम है।

तीर्थंकर-परम्परा

तीर्थ का एक अर्थ है—प्रवचन। भगवद्-वाणी को प्रवचन कहा जाता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्म-संघ को भी तीर्थ कहा जाता है। उसकी स्थापना करने वाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्कर को भगवान्, जिन, अर्हत्, देवाधिदेव भी कहा जाता है। अनादि काल से चले आ रहे जैन-धर्म का प्रवर्तन इस युग में भगवान् ऋषभ ने किया। वे प्रथम तीर्थङ्कर थे। उनके पश्चात् तेईस तीर्थङ्कर हुए। भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थङ्कर थे। तीर्थङ्करों के नाम इस प्रकार हैं:—

१.	भगवान्	ऋषभदेव	१०.	भगवान्	शीतलनाथ
२.	,,	अजितनाथ	११.	,,	श्रेयांसनाथ
३.	,,	सम्भवनाथ	१२.	,,	वासुपूज्य
४.	,,	अभिनन्दन	१३.	,,	विमलनाथ
५.	,,	सुमतिनाथ	१४.	,,	अनन्तनाथ
६.	,,	पद्मप्रभ	१५.	,,	धर्मनाथ
७.	,,	सुपार्श्वनाथ	१६.	,,	शान्तिनाथ
८.	,,	चन्द्र प्रभ	१७.	,,	कुन्थुनाथ
९.	,,	सुविधिनाथ	१८.	,,	अरनाथ

चत्तारि सरणं पवज्जामि	:	मैं चारों की शरण में जाता हूं—
अरहंते सरणं पवज्जामि	:	मैं अरहंतों की शरण में जाता हूं,
सिद्धे सरणं पवज्जामि	:	मैं सिद्धों की शरण में जाता हूं,
साहू सरणं पवज्जामि	:	मैं साधु की शरण में जाता हूं,
केवलि-पण्णत्तं धम्मं सरणं		मैं केवलि-भाषित धर्म की शरण
पवज्जामि	:	में जाता हूं।

प्रश्न :

१. चार मंगल कौन-कौन से हैं ?
२. "केवलि-पण्णत्तो धम्मो मंगलं" का क्या अर्थ है ?
३. "लोगुत्तमा" से क्या समझते हैं ?
४. शरण किसकी लेनी चाहिए ?

तीर्थंकर-परम्परा

तीर्थ का एक अर्थ है—प्रवचन। भगवद्-वाणी को प्रवचन कहा जाता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध धर्म-संघ को भी तीर्थ कहा जाता है। उसकी स्थापना करने वाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं। तीर्थङ्कर को भगवान्, जिन, अर्हत्, देवाधिदेव भी कहा जाता है। अनादि काल से चले आ रहे जैन-धर्म का प्रवर्तन इस युग में भगवान् ऋषभ ने किया। वे प्रथम तीर्थङ्कर थे। उनके पश्चात् तेईस तीर्थङ्कर हुए। भगवान् महावीर अन्तिम तीर्थङ्कर थे। तीर्थङ्करों के नाम इस प्रकार हैं:–

१.	भगवान्	ऋषभदेव	१०.	भगवान्	शीतलनाथ
२.	,,	अजितनाथ	११.	,,	श्रेयांसनाथ
३.	,,	सम्भवनाथ	१२.	,,	वासुपूज्य
४.	,,	अभिनन्दन	१३.	,,	विमलनाथ
५.	,,	सुमतिनाथ	१४.	,,	अनन्तनाथ
६.	,,	पद्मप्रभ	१५.	,,	धर्मनाथ
७.	,,	सुपार्श्वनाथ	१६.	,,	शान्तिनाथ
८.	,,	चन्द्र प्रभ	१७.	,,	कुन्थुनाथ
९.	,,	सुविधिनाथ	१८.	,,	अरनाथ

१९. भगवान् मल्लिनाथ		२२. भगवान् अरिष्टनेमि
२०. ,, मुनि सुव्रत		२३. ,, पार्श्वनाथ
२१. ,, नमिनाथ		२४. ,, महावीर

प्रश्न :

१ तीर्थङ्कर किसे कहते हैं ? सातवें, आठवें तथा इक्कीसवें तीर्थङ्करों के नाम बताओ।
२. अ-कार आदि वाले तीर्थङ्करों के नाम बताओ।
३. 'तीर्थ' के कितने अर्थ हैं ?
४. शान्तिनाथ कौन से तीर्थङ्कर थे ?

: ६ :

तेरापंथ की आचार्य-परम्परा

भगवान् महावीर ने संघ को सुव्यवस्थित बनाये रखने के लिये ६ गणों की व्यवस्था की। ६ गणों के ११ गणधर थे। भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् सुधर्मा स्वामी उनके उत्तराधिकारी बने। सुधर्मा स्वामी के पश्चात् उनके प्रमुख शिष्य जम्बुकुमार ने गण का भार सम्भाला। उनके पश्चात् अनेक आचार्य हुए जिन्होंने जैन शासन की अच्छी प्रभावना की।

विक्रम सं० १८१७ में आचार्य भीखण जी ने तेरापंथ की स्थापना की। वे तेरापंथ के प्रथम आचार्य हुए। आज तक तेरापंथ के आठ आचार्य हो चुके हैं। वर्तमान में नौवें आचार्य का शासन चल रहा है। आचार्यों के नाम इस प्रकार हैं—

१—आचार्य श्री भीखण जी
२—आचार्य श्री भारमल जी
३—आचार्य श्री रायचन्द जी
४—आचार्य श्री जीतमल जी
५—आचार्य श्री मघराज जी
६—आचार्य श्री माणकलाल जी
७—आचार्य श्री डालचन्द जी

परमेष्ठी-वन्दना

णमो अरहंताणं

वन्दना आनन्द-पुलकित, विनयनत हो मैं करूं ।
एक लय हो एक रस हो भाव-तन्मयता वरूं ॥

सहज निज आलोक से भासित स्वयं संबुद्ध है,
धर्म तीर्थंकर शुभंकर वीतराग विशुद्ध हैं ।
गति-प्रतिष्ठा-त्राणदाता, आवरण से मुक्त हैं,
देव अर्हन् दिव्य-योगज अतिशयों से युक्त हैं ॥

णमो सिद्धाणं

बन्धनों की शृंखला से मुक्त, शक्ति-स्रोत हैं,
सहज निर्मल, आत्म-लय में सतत ओत-प्रोत हैं ।
दग्ध कर भव-बीज अंकुर अरुज अज अविकार हैं,
सिद्ध परमात्मा परम ईश्वर अपुनरवतार हैं ॥

णमो आयरियाणं

अमलतम आचार धारा में स्वयं निष्णात हैं,
दीप सम शत दीप दीपन के लिए प्रख्यात हैं ।
धर्म शासन के धुरन्धर धीर धर्माचार्य हैं,
प्रथम पद के प्रवर प्रतिनिधि प्रगति में अनिवार्य हैं

प्रश्न ।

१. इस वन्दना में किन-किन की वन्दना की गई है ?
२. वीतराग, आत्म-मय, अन्तर्गाथ से क्या समझते हो ?
३. 'एक लय हो एक रस हो' का भावार्थ समझाओ ।
४. परमेष्ठी वंदना का तीसरा चरण लिखो ।

छात्र-प्रतिज्ञा

जीवन हम आदर्श बनाएं, उन्नति-पथ पर बढते जाएं।
क्यों न छात्र गुणपात्र कहाएं, जीवन हम आदर्श बनाएं॥

उच्च-उच्च आचरण वरेंगे, दुराचार से सदा डरेंगे।
आत्म-शक्ति का परिचय देंगे, नहीं कहीं दुर्बलता लाएं॥१॥

संयम-झूले में झूलेंगे, तत्त्व अहिंसा को छू लेंगे।
नहीं नम्रता को भूलेंगे, अनुशासन के नियम निभाएं॥२॥

नहीं किसी को गाली देंगे, नहीं किसी से घृणा करेंगे।
बोल जबान नहीं बदलेंगे, पदलोलुपता नहीं बढ़ाएं॥३॥

झूठ-कपट से सदा बचेंगे, जूआ चोरी नहीं रचेंगे।
पर-निन्दा में नहीं पचेंगे, आत्म-विजय ही लक्ष्य बनाएं॥४॥

मद्यपान में नहीं पड़ेंगे, भांग तम्बाकू से न भिड़ेंगे।
बुरी आदतों (के) साथ लड़ेंगे, ईर्ष्या मत्सर मान मिटाएं।५।

आस्तिकता को आश्रय देंगे, नास्तिकता न पनपने देंगे।
त्याग मार्ग में तन-मन देंगे, सद्गुरु में श्रद्धा रख पाएं॥६॥

: ६ :

संघ-गान

जय-जय धर्म संघ अविचल हो,
संघ संघपति प्रेम अटल हो।

हम सबका सौभाग्य खिला है
प्रभु यह तेरापंथ मिला है
एक सुगुरु के अनुशासन में, एकाचार विचार विमल हो ॥१॥

दृढ़तर, सुन्दर संघ संघठन
क्षीर-नीर-सा यह एकीपन
है अक्षुण्ण संघ मर्यादा, विनय और वात्सल्य अचल हो ॥२॥

संघ – सम्पदा बढ़ती जाये
प्रगति शिखर पर चढ़ती जाये
भैक्षव-शासन नन्दन वन की, सौरभ से सुरभित भूतल हो ॥३॥

'तुलसी' जय हो सदा विजय हो
संघ चतुष्टय बल अक्षय हो
श्रद्धा भक्ति बहे नस-नस में, पग-पग पर प्रतिपल मंगल हो ॥४॥

प्रश्न :

१. 'एकाचार विचार विमल हो', से आप क्या समझते हैं ?
२. इन शब्दों के अर्थ बताओ—अक्षुण्ण, वात्सल्य, संघ चतुष्टय।
३. संघ-गान का तीसरा पद्य लिखो।

जैन धर्म अहिंसा और समता में विश्वास करता है। अहिंसा का अर्थ है—किसी जीव को न मारना, न सताना, न पीड़ित करना। समता का अर्थ है—सबके साथ समभाव रखना।

जैन धर्म का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी है। वह प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखता है।

प्रश्न :

१. जैन धर्म का क्या अर्थ है ?
२. क्या जैन धर्म जातिवाद को मानता है ?
३. संसार की रचना किसने की ?
४. पुनर्जन्म किसे कहते हैं ?

जैन धर्म

जैनधर्म एक आध्यात्मिक धर्म है। राग-द्वेष विजेता को जिन, वीतराग कहते हैं। जिन के द्वारा प्रवर्तित धर्म जैन धर्म है।

जैन धर्म आत्मवादी है। वह मानता है कि आत्मा अजर अमर है। संसारी आत्मा कर्मों से बंधी हुई है अतः वह जन्म-मरण करती है। कभी वह मनुष्य बनती है, कभी पशु-पक्षी और कभी देवता।

जैन धर्म ईश्वर को मानता है पर उसको संसार के कर्त्ता-हर्त्ता के रूप में स्वीकार नहीं करता। यह संसार सदा से था, है और रहेगा। प्रत्येक जीव ईश्वर बन सकता है। ईश्वर एक नहीं, अनेक हैं।

जैन धर्म पूर्वजन्म और पुनर्जन्म को मानता है।

जैन धर्म जातिवाद में विश्वास नहीं करता। वह मानता है कि मनुष्य जाति एक है, समान है। कोई बड़ा-छोटा नहीं है, कोई ऊँचा-नीचा नहीं है।

जैन धर्म पुरुषार्थवादी है, वह मानता है कि कर्ममल को क्षय कर जीव मुक्त हो सकता है। मुक्त आत्माओं का पुनर्जन्म नहीं होता। तथा समस्त कर्मों को पुरुषार्थ से तोड़ा जा सकता है।

जैन धर्म अहिंसा और समता में विश्वास करता है। अहिंसा का अर्थ है—किसी जीव को न मारना, न सताना, न पीड़ित करना। समता का अर्थ है—सबके साथ समभाव रखना।

जैन धर्म का दृष्टिकोण अनेकान्तवादी है। वह प्रत्येक वस्तु को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से देखता है।

प्रश्न :

१. जैन धर्म का क्या अर्थ है ?
२. क्या जैन धर्म जातिवाद को मानता है ?
३. संसार की रचना किसने की ?
४. पुनर्जन्म किसे कहते हैं ?

: ११ :

तेरापंथ

आचार्य भिक्षु स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए। आठ वर्ष तक वहां रहे। आचार और विचार में मतभेद होने के कारण वे वहां से अलग हो गए। वे कोई नया संगठन करना नहीं चाहते थे। आचार का विशुद्ध पालन करना ही उनका एकमात्र लक्ष्य था।

जब वे पृथक् हुए तब उनके साथ तेरह साधु थे। जोधपुर की घटना है कि वहां एक दुकान में तेरह श्रावक पौषध कर रहे थे। उसी समय स्थानीय दीवान फतेहसिंहजी सिंघी उधर से आ निकले। उन्होंने श्रावकों से पूछा – आप यहां पौषध क्यों कर रहे हैं ? इसके उत्तर में श्रावकों ने बताया कि हमारे गुरु ने स्थानक का परित्याग कर दिया है, इसलिए हमने यहां पौषध किया है। दीवानजी के आग्रह पर उन्होंने सारा विवरण सुनाया। उस समय वहां एक सेवक जाति का कवि पास में खड़ा था। उसने तेरह की संख्या को ध्यान में लाकर तत्काल एक दोहा बना डाला—

आप आप रो गिलो करै, ते आप आप रो मंत।
सुणज्यो रे शहर रा लोकां, ए तेरापंथी तंत ॥

उस समय आचार्य भिक्षु मेवाड़ में विराज रहे थे। उन्हें इसका पता चला, तब उसी समय आसन छोड़ व हाथ जोड़

कर आपने प्रभु को सम्बोधन करते हुए कहा—"हे प्रभो ! यह तेरा पंथ है"—यह आपका मार्ग है। हम केवल इस मार्ग पर चलने वाले हैं।

आपने तेरापंथ का दूसरा अर्थ करते हुए कहा—जो तेरह नियमों का पालन करता है वह तेरापंथी है।

तेरह नियम

तेरापंथ के प्रमुख तेरह नियम हैं :—पांच महाव्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति।

पांच महाव्रत :

१. अहिंसा —हिंसा नहीं करना।
२. सत्य —झूठ नहीं बोलना।
३. अस्तेय —चोरी नहीं करना।
४. ब्रह्मचर्य —स्त्री संग नहीं करना।
५. अपरिग्रह—धन-धान्य नहीं रखना और ममत्व का त्याग करना।

पांच समिति :

१. ईर्या समिति —देखकर चलना।
२. भाषा समिति —विचार पूर्वक निरवद्य बोलना।
३. एषणा समिति —शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करना।
४. आदान निक्षेप समिति —वस्त्र आदि उपकरणों को सावधानी से लेना और रखना।
५. परिष्ठापन समिति —मल-मूत्र का उत्सर्ग करने में सावधानी रखना।

: १२ :

भगवान् महावीर

जन्म और नाम

संसार के महापुरुषों में भगवान् महावीर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे जैन धर्म के चौवीसवें तीर्थङ्कर थे।

आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व विहार में वैशाली गणतन्त्र था। उसमें 'क्षत्रिय कुंडग्राम' नाम का एक नगर था। उस नगर के अधिपति क्षत्रिय सिद्धार्थ थे। उनकी पत्नी का नाम त्रिशला था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन त्रिशला ने एक बालक को जन्म दिया। बालक का नाम 'वर्धमान' रखा गया। भगवान् महावीर के तीन नाम थे—वर्धमान, महावीर और ज्ञातपुत्र। जिस दिन वे जन्मे थे, उस दिन से उनके घर में ऐश्वर्य की खूब वृद्धि हुई, इसलिए वे 'वर्धमान' कहलाए। उन्होंने साधना काल में कष्टों को वीरवृत्ति से सहन

भगवान् महावीर

जन्म और नाम

संसार के महापुरुषों में भगवान् महावीर का नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है। वे जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थङ्कर थे।

आज से करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व विहार में वैशाली गणतन्त्र था। उसमें 'क्षत्रिय कुंडग्राम' नाम का एक नगर था। उस नगर के अधिपति क्षत्रिय सिद्धार्थ थे। उनकी पत्नी का नाम त्रिशला था। चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन त्रिशला ने एक वालक को जन्म दिया। वालक का नाम 'वर्धमान' रखा गया। भगवान् महावीर के तीन नाम थे—वर्धमान, महावीर और ज्ञातपुत्र। जिस दिन वे जन्मे थे, उस दिन से उनके घर में ऐश्वर्य की खूब वृद्धि हुई, इसलिए वे 'वर्धमान' कहलाए। उन्होंने साधना काल में कष्टों को वीरवृत्ति से सहन

साधना काल

साधना काल में भगवान् ने अनेक कष्ट सहे। कुछ लोग उन्हें चोर समझ कर पीटने लग जाते। बच्चे पत्थरों से मारते, कुत्तों को खाने के लिए प्रेरित करते। चंडकौशिक सर्प ने भी भीषण डंक लगाए। संगम नामक देव ने भगवान् को २० मारणान्तिक (मृत्यु हो जाए, ऐसे) कष्ट दिए। भगवान् क्षमा-शूर थे। उन्होंने सब कुछ समभाव से सहन किया। भगवान् ने कठोर तप तपा। उन्होंने दो दिन के उपवास से लेकर छह महीने तक की तपस्या की, उन्होंने तपस्या में पानी भी ग्रहण नहीं किया।

कैवल्य-प्राप्ति

दीर्घ तपस्या के साथ-साथ भगवान् महावीर ध्यान से आत्मा को भावित कर रहे थे। साधना काल में बहुत कम बोलते थे, अधिकतर वे मौन ही रहते थे। इस प्रकार १२ वर्ष और १३ पक्ष तक वे साधना करते रहे। वैशाख शुक्ला १० के दिन 'जंभिय' ग्राम में आए। वहां 'ऋजुवालिका' नदी थी। उसके किनारे शाल वृक्ष था। उसके नीचे वे गोदोहिका आसन में ध्यानस्थ थे। उस समय दो दिन का उपवास था। ज्ञान की पवित्रता बढ़ी, मोह का आवरण हटा। भगवान् वीतराग हो गए। अब वे केवल-ज्ञान को पाकर अरहन्त हो गए।

कैवल्य-प्राप्ति के बाद

केवल ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् भगवान् का पहला प्रवचन देवों के बीच हुआ, भगवान् ने संयम की महत्ता पर प्रकाश डाला—देव विलासी होते हैं, वे संयम को स्वीकार नहीं कर सकते। दूसरा उपदेश पावापुरी में हुआ। वहां यज्ञ

श्रीमद् भिक्षु स्वामी

तेरापंथ के प्रवर्तक श्रीमद् भिक्षु स्वामी का जन्म वि० सं० १७८३, आषाढ़ शुक्ला १३ को कंटालिया (मारवाड़) में हुआ था। आपके पिता का नाम वल्लूजी तथा माता का नाम दीपांजी था। आपकी जाति ओसवाल तथा वंश सुकलेचा था। आप प्रतिभाशाली धार्मिक व्यक्ति थे। पत्नी का देहान्त हो जाने पर आप अकेले ही दीक्षा लेने के लिए उद्यत हुए, परन्तु आपकी माता ने दीक्षा की आज्ञा नहीं दी। तत्कालीन स्थानक वासी सम्प्रदाय के आचार्य श्री रघुनाथजी के समझाने पर माता ने कहा—"महाराज! मैं इसे दीक्षा की अनुमति कैसे दूँ, क्योंकि जब यह गर्भ में था तब मैंने सिंह का स्वप्न देखा था, इसलिए यह सिंह जैसा पराक्रमी होगा।" तब आचार्य रघुनाथजी ने कहा—"बाई! यह तो बहुत अच्छी बात है। तेरा बेटा साधु बनकर सिंह की तरह गूंजेगा।" इस प्रकार उनके समझाने पर माता ने राजी होकर दीक्षित होने की आज्ञा दे दी। आपने वि० सं० १८०८ में मार्गशीर्ष कृष्णा १२ को बगड़ी (मारवाड़) में उनके पास दीक्षा ग्रहण की।

आपकी दृष्टि पैनी थी। तत्त्व की गहराई में पैठना आपके लिए स्वाभाविक बात थी। आप थोड़े ही वर्षों में जैन शास्त्रों के

में ४६ साधु और ५६ साध्वियां दीक्षित हुई। उनमें आचार्य भारमलजी, मुनिश्री थिरपालजी, फतेचन्दजी, हरनाथजी, टोकरजी, खेतसीजी, वेणीरामजी, हेमराजजी आदि साधु उल्लेखनीय हैं।

वि० सं० १८६० सिरियारी (मारवाड़) में भाद्रव शुक्ला १३ के दिन सात प्रहर के अनशन में आपकी समाधि पूर्ण मृत्यु हुई। उस समय आपकी आयु ७७ वर्ष की थी।

प्रश्न :

१. भिक्षु स्वामी के जन्म का वर्ष और तिथि बताओ।
२. स्वामीजी की माता ने दीक्षा की अनुमति देने से हिचकिचाहट क्यों की ?
३. स्वामीजी ने दीक्षा कब और किसके पास ली ?
४. स्वामीजी स्थानकवासी सम्प्रदाय से पृथक् कब और क्यों हुए ?

पने में कठिनाइयां आती हैं। कहीं भोजन नहीं मिलता, कहीं
प्यासा रहना होता है। तुम अभी बालक हो। कभी ऐ
अवसर आ जाए, तब रुपयों का उपयोग कर लेना। यह तुम्हा
पढ़ने के कागजों में पड़ा रहेगा।"

अपने बड़े भाई की बात सुनकर आपने मुस्करा कर कहा—
"भाईजी! यह तो परिग्रह है, साधु को परिग्रह रखना कल्प
नहीं।" अब श्री मोहनलालजी को पूर्ण विश्वास हो गया।
इनका वैराग्य सच्चा है।

दीक्षा-संस्कार

आचार्य श्री कालूगणी के करकमलों से हजारों लोगों
परिषद् में वि० सं० १९८२, पोष कृष्णा ५ को आपका दी
संस्कार लाडनूं में सम्पन्न हुआ। आपके साथ आपकी व
लाडांजी भी दीक्षित हुई।

अध्ययन

आपको बचपन से ही अध्ययन में अनुराग रहा।
कक्षा में आप सदा ही मेधावी छात्र रहे। मुनि बनते ही
अपना सारा समय अध्ययन में लगाने लगे। मुनि-जीव
थोड़े वर्षों में ही आपने व्याकरण, कोष, साहित्य, दर्शन तथ
जैनागमों का अच्छी तरह अध्ययन कर लिया। अध्ययन के
साथ-साथ आप बाल-मुनियों को अध्यापन भी कराते थे। आ
कुशल अध्यापक भी रहे हैं।

युवाचार्य

वि० सं० १९९३ में आचार्य कालूगणी का चातुर्मासि
प्रवास गंगापुर में था। वहां गुरुदेव का शरीर रोग से पीड़ि
हो गया। देह की स्थिति को देखकर आचार्यश्री ने भा

शुक्ला ३ को युवाचार्य की नियुक्ति का पत्र लिखा। उसके तुरन्त पश्चात् उसी दिन युवाचार्य पद की पछेवड़ी (उत्तरीय) मुनि तुलसी को धारण करवाई और जनता को वह ऐतिहासिक पत्र पढ़कर सुनाया। मुनि तुलसी युवाचार्य घोषित हुए। चतुर्विध संघ ने अत्यन्त उल्लास के साथ युवाचार्य का स्वागत किया। समूचा संघ योग्य धर्म नेता को पाकर आश्वस्त बन गया।

आचार्यश्री का युवाचार्यकाल केवल चार दिन रहा। भाद्र शुक्ला ६ को पूज्य श्री कालूगणी का स्वर्गवास हो गया। उस समय आपकी अवस्था २२ वर्ष की थी। उस छोटी अवस्था में आप विशाल तेरापंथ संघ के आचार्य बने। उस समय तेरापंथ संघ में १३९ साधु व ३३३ साध्वियां थीं।

महान् आचार्य

आचार्य पद का गुरुतर भार आते ही आप ने संघ में शिक्षा का अत्यधिक प्रसार किया, जिसका परिणाम है कि आज संघ में अनेक विद्वान् साधु-साध्वियां विद्यमान हैं। शिक्षा के लिए तेरापंथ का स्वतन्त्र पाठ्यक्रम है। अध्यापन का कार्य स्वयं आचार्यश्री व साधु-साध्वियाँ कराते हैं।

अणुव्रत आन्दोलन

जनता के नैतिक उत्थान के लिए आचार्यश्री ने विक्रम संवत् २००५ फाल्गुन शुक्ला २ को सरदारशहर में अणुव्रत आन्दोलन का सूत्रपात किया।

यात्राएं

अणुव्रत आन्दोलन को घर-घर पहुँचाने के लिए आचार्यश्री ने दिल्ली, कलकत्ता, पंजाब आदि की यात्राएं कीं। इससे

।

भाषा और साहित्य स्रष्टा

आचार्यश्री की वक्तृत्वकला अपूर्व है। गम्भीरतम वि
को सरल बनाकर जनता के समक्ष प्रस्तुत करना आपकी
विशेषता है। परिषद् के अनुरूप ही आपकी भाषा-शैली होती
है। आप कभी राजस्थानी में तो कभी हिन्दी में प्रवचन करते हैं।

आपने अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। राजस्थानी भाषा में लिखे ग
आपके महत्वपूर्ण ग्रन्थ—कालूयशोविलास, मगन चरित्र, डाल
चरित्र, आदि राजस्थानी साहित्य भण्डार के रत्न हैं। आप
प्रवचनों के अनेक संकलन प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी तथा संस्कृ
भाषा में भी आपके लिखे अनेक स्वतंत्र ग्रन्थ हैं।

आपने जैन-आगमों के सम्पादन का संकल्प कर एक अनूठ
कार्य हाथ में लिया है। इस कार्य में अनेक साधु-साध्विय
संलग्न हैं। अनेक आगम सुसम्पादित होकर प्रकाशित हुए हैं
जैन शासन के प्रति आपकी यह सेवा स्वर्णाक्षरों में अंकित हो
जैसी है।

युवाचार्य पद पर नियुक्ति

आचार्य के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य भावी आचार्य की नियुक्ति करना होता है। यह कार्य आपने सम्वत् २०३५, मर्यादा महोत्सव (माघ शुक्ला ७) के शुभ अवसर पर राजलदेसर में महाप्रज्ञ मुनिश्री नथमलजी को युवाचार्य पद पर मनोनीत कर पूरा किया तथा उनका नाम भी परिवर्तित कर महाप्रज्ञ रखा है।

इस प्रकार आप के व्यक्तित्व के अनेक कोण हैं। इस पाठ में कुछेक कोणों का ही प्रतिपादन किया गया है।

प्रश्न।

१. आचार्यश्री का जन्म कहां और कब हुआ?
२. मोहनलालजी ने आचार्यश्री के वैराग्य की परीक्षा कैसे ली?
३. आचार्यश्री को युवाचार्य पद कहां और कब दिया गया?
४. आचार्यश्री ने किन-किन प्रान्तों की यात्रा की?

: १५ :

प्रभात-कार्य

प्रकृति के नियमानुसार सब लोग रात्रि को सोते हैं और सुबह उठते हैं। उठने के बाद शरीर-सम्बन्धी शौचादि प्रभात-कार्य करते हैं। शरीर को साफ-सुथरा एवं स्वस्थ रखने की कोशिश करते हैं। मन को पवित्र रखने के लिए धर्माचरण करने का यह सुन्दर समय है। अध्ययन और स्वाध्याय के लिए भी प्रभात का समय अत्यन्त उपयोगी और प्रशस्त माना गया है।

प्रातःकाल परमेष्ठी महामन्त्र की एक माला का जाप अवश्य करना चाहिये। हाथ की अंगुलियों के बारह पोर होते हैं, उन पर नौ बार मन्त्रजाप करने से एक माला पूरी हो जाती है। इसलिए इसको नवकरवाली भी कहा जाता है। कुछ व्यक्ति अंगुलियों के सिरों पर मन्त्र-जाप करते हैं और कुछ व्यक्ति माला के मनकों पर। इन दोनों तरह से ही १०८ बार जाप किया जाता है। मन्त्र जपते समय हृदय सरल और शरीर स्वच्छ होना चाहिये।

प्रतिदिन एक सामायिक अवश्य करना चाहिए। दैनिक उपासना के लिए यह बहुत उपयोगी है। ४८ मिनट के लिए सांसारिक झंझटों से दूर होकर ज्ञान, ध्यान, स्वाध्याय में मन लगाने से बड़ी शान्ति मिलती है। जीवन को सुखमय बनाने के लिए संयम आवश्यक होता है। सामायिक करने से समता का लाभ और संयम का अभ्यास होता है।

प्रश्न :

१. मन को पवित्र करने का क्या उपाय है ?
२. साधुओं के दर्शन क्यों करने चाहिएं ?
३. महामन्त्र का जाप करने से क्या लाभ हैं ?
४ महामन्त्र में किनका स्मरण किया जाता है ?
५. 'नवकरवाली' शब्द का क्या अर्थ है ?
६. हाथ के विरवों पर कितनी बार जप जपने से नवकरवाली होती है ?
७. सामायिक से क्या लाभ होता है ?

देव, गुरु, धर्म

प्रश्न— तुम्हारे देव कौन हैं ?

उत्तर—अरहन्त ।

प्रश्न— अरहन्त किसे कहते हैं ?

उत्तर—चार घनघाती कर्म - ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय एवं अन्तराय को क्षीण कर जिन्होंने केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थ की स्थापना की है, वे अरहन्त कहलाते हैं ।

प्रश्न— देव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—देव राग-द्वेष रहित-वीतराग अर्थात् समदर्शी होते हैं वे यथावस्थित तत्त्वों का उपदेश करते हैं और सत्य-धर्म को प्रवर्तित करते हैं ।

प्रश्न — देव साकार हैं या निराकार ?

उत्तर — देव साकार होते हैं । क्योंकि वे मनुष्य शरीरधारी हैं जब वे सब कर्मों का नाश कर मुक्त हो जाते हैं तब निराकार होते हैं ।

प्रश्न — देव के [illegible] होते हैं ?

उत्तर—अरहन्त, जिन, परमात्मा, परमेश्वर, प्रभु, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, देवाधिदेव आदि।

प्रश्न— भैरू, भवानी, रामदेव आदि अनेक देव दुनिया में माने जाते हैं, तो क्या वे देव नहीं हैं ?

उत्तर—वे धर्म प्रवर्तक देव नहीं हैं, लौकिक देव हैं।

प्रश्न— गुरु किसे कहते हैं।

उत्तर—पांच महाव्रतों का पालन करने वाले साधु को गुरु कहते हैं।

प्रश्न— धर्म किसे कहते हैं ?

उत्तर—"आत्मशुद्धि साधनं धर्मः"—जिन उपायों से आत्मशुद्धि होती है, उनको धर्म कहते हैं।

प्रश्न— वे उपाय कौन-कौन से हैं ?

उत्तर—संवर और निर्जरा।

प्रश्न— इनका आचरण किस प्रकार किया जाता है ?

उत्तर—त्याग-तपस्या करके। किसी को नहीं सताना, क्रोध नहीं करना, झूठ नहीं बोलना, भ्रष्टाचार नहीं करना, मैत्री और करुणाभाव रखना, पवित्र रहना, विनय आदि का आचरण करना आत्म-शुद्धि के उपाय हैं।

प्रश्न।

१. देव का स्वरूप क्या है ?
२. गुरु के लक्षण बताइये ?
३. धर्म का स्वरूप क्या है ? उसके उपाय कौन-कौन से हैं ?

रमा—क्या देखती हो कान्ता ? रात होने वाली है, भोजन कब करोगी ?

कान्ता—भोजन पड़ा रहने दो। रात हो जायगी तो क्या, आज न खाया सही। देखो कैसी सुहावनी छवि है, चारों ओर घन-घोर घटा उमड़ रही है, बिजली कौंध रही है, नन्हीं-नन्हीं बूँदें गिर रही हैं, इधर आकर देखो तो सही !

रमा—ओह ! यह तो बड़ा ही सुन्दर दृश्य है।

कान्ता—क्या तुम्हें यह पता है कि बरसात का पानी सजीव होता है ?

रमा—नहीं, मुझे तो यह ज्ञान नहीं है। क्या पानी भी सजीव होता है ?

कान्ता—हाँ, पानी भी सजीव होता है, इसे अप्कायिक जीव कहते हैं।

रमा—क्या आकाश में चमकने वाली बिजली भी सजीव है ?

कान्ता—हाँ, वह भी सजीव है, सिर्फ उनमें ही क्या, जितनी भी प्रकार की आग है, वह सब सजीव है। क्या तुमने कभी तेजस्काय का नाम नहीं सुना है ?

रमा—नाम तो सुना था, पर मैं समझ नहीं सकी कि आग को तेजस्काय कहते हैं। अच्छा बहिन ! एक बात तो और बताओ कि जो यह ठंडी पवन चल रही है, क्या यह भी सजीव हैं ?

कान्ता—हाँ-हाँ, यह भी वायुकाय के जीव है।

रमा—सामने इतनी हरियाली खड़ी है, क्या इसके बारे में भी मुझे कुछ बता सकोगी ?

सावद्य-निरवद्य

रमन सोलह वर्ष का बालक था। वह घूमता-घूमता साधुओं के ठिकाने जा पहुँचा। वहां उसका मित्र मोहन मुंह पर एक सफेद वस्त्र बांधे बैठा था। उसे देखते ही रमण बोला, "मोहन! आज यह क्या? चलो बाजार चलें।"

मोहन—मैं नहीं जा सकता, मैंने सामायिक-व्रत ले रखा है।

रमण—सामायिक फिर क्या होती है?

मोहन—सावद्य योग का त्याग करने का नाम सामायिक है।

रमण—सावद्य योग किसे कहते हैं?

मोहन—जो काम पाप सहित होते हैं, वे सब सावद्य हैं, जैसे हिंसा करना, झूठ बोलना, चोरी करना, व्यापार करना आदि-आदि।

रमण—क्या तुम इस वक्त व्यापार भी नहीं कर सकते?

मोहन—व्यापार तो दूर रहा, मैं तो तुमसे यहां आने-जावे के लिए भी नहीं कह सकता।

रमण—अच्छा, मैं बाजार से सब्जी लाता हूं। वह तो खाओगे न?

मोहन—कैसी बातें कर रहे हो, मैं सब्जी को छू भी नहीं सकता।

रमण—इससे तुम्हें क्या कोई लाभ भी हुआ ?

मोहन—हां लाभ की क्या बात कहूं, सामायिक की साधना करते-करते मेरे आचरण भी सुधर गये हैं। मुझे सच्चे सुख का अनुभव होने लगा है। मैं मानता हूं कि मैं मनुष्य बन गया हूं। मैंने इससे समता का अभ्यास सीखा है।

रमण—अच्छा मित्र ! आज से मैं भी सामायिक का अभ्यास करूंगा।

प्रश्न :

१. कच्चा जल पीना और पिलाना सावद्य है या निरवद्य ?
२, मोहन ने सामायिक में सब्जी लेने से इन्कार क्यों किया ?
३. सामायिक और साधुपन में क्या अन्तर है ?
४. सामायिक में कौन-कौन से काम नहीं करने चाहिये ?
५: सावद्य-निरवद्य का अर्थ समझाओ।
६. सामायिक से क्या लाभ होता है ?

इन्द्रियाँ

दिनेश—सुरेश तुम कौन हो ?

सुरेश—मैं जीव हूं।

दिनेश—जीव कैसे ?

सुरेश—मुझ में ज्ञान है।

दिनेश—ज्ञान से तुम्हें क्या लाभ मिलता है ?

सुरेश—मैं ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु को—किसी को छूकर, किसी को चखकर, किसी को सूंघकर, किसी को देखकर और किसी को सुनकर जान लेता हूं।

दिनेश—बर्फ कैसी होती है ?

सुरेश—ठण्डी।

दिनेश—आग कैसी होती है ?

सुरेश—गर्म।

दिनेश—बर्फ ठण्डी होती है और आग गर्म होती है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश—छूकर। दिनेश ! जिसके द्वारा हम छूकर वस्तु को जानते हैं, उसको 'स्पर्शन-इन्द्रिय' कहते हैं।

दिनेश—मिश्री कैसी होती है ?

सुरेश—मीठी ।

दिनेश—नीबू कैसा होता है ?

सुरेश—खट्टा ।

दिनेश—मिश्री मीठी और नीबू खट्टा होता है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश—जीभ से चख कर। दिनेश ! जिसके द्वारा वस्तु का स्वाद जाना जाता है, उसको 'रसन-इन्द्रिय' कहते हैं ।

दिनेश—क्या तुमने कभी गुलाब का फूल सूंघा है ?

सुरेश—हां, कई बार । उसमें बड़ी सुगन्ध आती है ।

दिनेश—क्या तुम मिट्टी के तेल के पास खड़े रह सकते हो ?

सुरेश—नहीं, उसमें बड़ी दुर्गन्ध आती है ।

दिनेश—गुलाब के फूलों में सुगन्ध और मिट्टी के तेल में दुर्गन्ध आती है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश—नाक से सूंघ कर। दिनेश ! जिसके द्वारा सूंघकर हम वस्तु का ज्ञान करते हैं, उसे 'घ्राण-इन्द्रिय' कहते हैं ।

दिनेश—कौवे का रङ्ग कैसा होता है ?

सुरेश—काला ।

दिनेश—बुगले का रङ्ग कैसा होता है ?

सुरेश—सफेद ।

दिनेश—कौवा काला और बुगला सफेद होता है, यह तुमने कैसे जाना ?

सुरेश—आंखों से देखकर । दिनेश ! जिसके द्वारा हम देखते हैं उसे 'चक्षु-इन्द्रिय' कहते हैं ।

वसुमती (१)

वसुमती—भोर ही भोर रोज कहां जाया करती हो मां ?

मां—साध्वियों के स्थान में।

वसुमती—क्यों मां ?

मां—साध्वियों के दर्शन करने के लिए।

वसुमती—उससे क्या होगा ?

मां—बेटी ! उनके दर्शन करने से मन को शान्ति मिलेगी और सदाचार सीखने को मिलेगा।

वसुमती—तब तो मैं भी वहां जाऊंगी।

मां—बहुत अच्छा। जाना ही चाहिये। (हाथ में कपड़ा लेकर) लो चलो, अब साध्वियों के यहां चलें।

वसुमती—यह हाथ में सफेद कपड़े का टुकड़ा-सा क्या है ?

मां—बेटी ! यह मुंहपत्ती है।

वसुमती—मां ! इसका क्या करोगी ?

मां—बेटी ! मैं वहां जाकर इसको मुंह पर बांधूंगी।

वसुमती—क्यों मां ?

मां—साध्वियों को वन्दना करते समय खुले मुंह नहीं बोलना चाहिए।

वसुमती (२)

(मां को आसन आदि लिए जाते देख कर)

मती—क्या फिर वहीं जा रही हो मां ?

मां—हां, वेटी ।

सुमती—मैं भी चलूंगी ।

मां—नहीं वेटी ! अब वहां व्याख्यान होगा, तुम अभी ब
वालिका हो, तुम न तो एक-डेढ़ घण्टे तक एक
जमकर वैठी ही रहोगी और न घूम किये विना
वीच में उठे विना ही रहोगी । इसीलिए इस
तुम्हारा वहां जाना ठीक नहीं ।

वसुमती—नहीं मां ! मैं शान्ति से सुनूंगी । न घूम करू
न व्याख्यान के वीच में उठूंगी ही ।
(दोनों साध्वियों के स्थान पर आईं । इतने
देखा कि उसकी जेव में एक गुलाव का फूल

मां—(वड़े ही कोमल शब्दों में) वेटी ! इसको
रख दो ।

वसुमती—मां ! इसमें क्या आपत्ति है ?

वसुमती का बाल-हृदय अत्यन्त प्रभावित हुआ। साध्वीश्री ने मंगल पाठ पढ़कर व्याख्यान समाप्त किया। वसुमती जल्दी से उठने लगी।)

मां—बेटी ! थोड़ा धीरज रखो। पहले आगे वाली बहिनों को निकल जाने दो। इतने उतावलपन से क्या मतलब ? हर एक काम सभ्यता से करना चाहिये। अच्छा बताओ, आज के व्याख्यान से तुम क्या सीखोगी ? क्योंकि व्याख्यान सुनने का लाभ तो यही है कि उससे कुछ न कुछ सीखा जाए।

मती—मां ! आज से नियम लेती हूं कि मैं जो कुछ भी करूंगी, उसके पहले कम से कम नमस्कार मन्त्र का पांच बार स्मरण अवश्य करूंगी।

न :

माता ने वसुमती को व्याख्यान में जाने से क्यों रोका ?
. माता ने गुलाब के फूल को अलग क्यों रखवाया ?
. सामायिक में पूंजनी क्यों रखी जाती है ?
. वसुमती ने व्याख्यान से क्या सीखा ?
. व्याख्यान सुनने से क्या लाभ है ?

: २२ :

सच्चे मानव

सच्चे मानव हम बन पायें

फूंक-फूंक कर पैर बढ़ायें, बाधाओं को दूर हटायें
दे तिलाञ्जलि स्वार्थ-भाव को, परम अर्थ के पथ पर जायें।
सच्चे मानव हम बन पा

क्रोध हमारा सबसे बढ़कर, दुश्मन उसको दूर भगायें।
क्षमा हमारा परम धर्म है, उसके खातिर प्राण लगायें।
सच्चे मानव हम बन पा

मानव बनकर नहीं कभी हम, पशुता की गणना में आयें
बुद्धि-ज्ञान-विवेक-तर्क को, भारभूत हम नहीं बनायें।
सच्चे मानव हम बन पा

न्याय-मार्ग पर अटल रहें नित, नहीं किसी से वैर बढ़ाएं
सत्य-अहिंसा शैल-शिखर पर, चढ़कर मनसा मोद मनायें।
सच्चे मानव हम बन पा

प्रश्न :

१. तुम्हारा सबसे बड़ा शत्रु कौन है ?
२. तिलांजलि किसे देनी चाहिए ?
३. हमारा परम

भा

विनय

सुशीला—मां, तुम नीला को बार-बार उलाहना देती हो पर श्यामा को कुछ भी नहीं कहती, ऐसा क्यों है, मां ?

मां—श्यामा बड़ी विनीत और सुशील है, बेटी !

सुशीला—विनीत कैसे ?

मां—बेटी ! वह मेरा कहा मानती है। इशारे में समझती है। दोनों वक्त बड़ों को प्रणाम करती है। संत-सतियों के नियमित दर्शन करती है, उन्हें वन्दना करती है। किसी से लड़ाई-झगड़ा नहीं करती। मैं जो कुछ काम करने को कहती हूं, उसे वह सहर्ष स्वीकार करती है। सबसे मेलजोल रखती है। उसका झुका हुआ सिर, जुड़े हुए हाथ, कितने मोहक लगते है !

सुशीला—मां ! उसने तो मुझे भी मोहित कर डाला।

मां—बेटी ! नम्रता तो मोहनी-मन्त्र है न ! इससे पत्थर-हृदय भी पसीज जाता है।

सुशीला—मां ! क्या नीला विनय नहीं करती ?

मां—अरी, विनय कहां, वह तो हर बार तड़ाके से जवाब देती है और न कोई काम ही ठीक तरह से करती है। इसीलिए तो वह किसी को भी अच्छी नहीं लगती।

सुशीला—मां ! मैं समझ गई, जब भी साधु महाराज आया करते हैं, तब तुम [illegible] करती हो, सिर झुकाया करती हो, हाथ जोड़ा करती हो। यह सब बात है, तुम उनकी विनय किया करती हो।

मां—हां, सुशीला ! वे अपने धर्मगुरु हैं। उनकी तो जितनी विनय-भक्ति की जाये वह थोड़ी है। बेटी ! वे हमको आत्म-सुधार का रास्ता बताते हैं। जिस प्रकार जो बड़े हैं उनका विनय करना हमारा प्रथम कर्तव्य है उसी तरह धर्मगुरुओं का विनय करना भी हमारा पहला धर्म है।

सुशीला—मां ! तुमने आज मुझे बड़ी अच्छी बात बताई। मैं सदा विनय किया करूंगी और अविनय कभी नहीं करूंगी।

प्रश्न :

१. विनय का अर्थ स्पष्ट समझाओ।
२. अगर तुम से अविनय हो जाये तो तुम क्या करोगे ?

: २४ :

क्रोध को क्षमा से शान्त करो

पुराने जमाने की बात है। एक जंगल में कनकखल नाम का आश्रम था। वहां अनेक तपस्वी रहते थे। उस आश्रम का कुलपति बहुत क्रोधी था। उसका नाम था चंडकौशिक। एक बार कुछ राजकुमार उसके आश्रम में आकर फल-फूल तोड़ने लगे। वह उनके पीछे दौड़ा। पैर फिसल गया। वह एक गड्ढे में गिरा और तत्काल मर गया। मर कर वह उसी जंगल में सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ। यह क्रोध का ही परिणाम था।

एक बार भगवान् महावीर घूमते-घूमते उसी जंगल में आ गए। वे वनखण्ड में वहां पहुंच कर ध्यान में स्थिर हो गए। चंडकौशिक सर्प वहां आया। उसने अपने बिल के पास एक मनुष्य को देखा। उसका क्रोध भभक उठा। उसकी आंखों से विष की ज्वालाएं उछलने लगीं। विषधर ने तीन बार फुंफकारते हुए महावीर को डंक मारने का प्रयत्न किया किन्तु वे ध्यान से विचलित नहीं हुए। अन्त में उसने महावीर के पैर में डंक मारा। रक्त की धारा बह चली। विष-धर ने उसे चूसा। लहू दूध जैसा लगा। विषधर सोचने लगा। उसका अहं चूर-चूर हो गया।

तात्पर्य

क्रोध को क्रोध से नहीं जीता जा सकता। क्रोध करने वाला बच्चा अपने परिवार में भी आदर नहीं पा सकता, इसलिये बच्चों को क्रोध से नहीं क्षमा के द्वारा क्रोध पर विजय प्राप्त करनी चाहिए।

प्रश्न :

१. चण्डकौशिक सर्प का अहं क्यों चूर-चूर हो गया ?

२. भगवान महावीर ने सर्प से क्या कहा ?

३. क्रोध कैसे शान्त होता है ?

अमरकुमार–"हां रानीजी ! सुन रहा हूं, कौनसा मन्त्र है वह ?

रानी—"लो सीखो"

रानी ने नमस्कार महामन्त्र का उच्चारण किया।

अमरकुमार–मैं इसे पहले ही जानता हूं, मैंने यह साधुओं से सीखा था।

रानी–तो बस, चिन्ता की कोई बात नहीं। आंसू पोंछ लो और स्थिर-चित्त होकर इसका जाप करने लग जाओ।

कुमार को इससे बड़ा बल मिला। वह मन्त्र का जाप करने लग गया। होम करने वाले आये और ज्योंही उसे अग्नि-कुण्ड में ढकेलना चाहा, त्योंही नमस्कार-मन्त्र के प्रभाव से अग्नि ठंडी हो गई। वहां एक सिंहासन बन गया और वे मूर्च्छित

अमरकुमार—"हां रानीजी ! सुन रहा हूं, कौनसा मन्त्र है वह ?

रानी—"लो सीखो"

रानी ने नमस्कार महामन्त्र का उच्चारण किया।

अमरकुमार—मैं इसे पहले ही जानता हूं, मैंने यह साधुओं से सीखा था।

रानी—तो बस, चिन्ता की कोई बात नहीं। आंसू पोंछ लो और स्थिर-चित्त होकर इसका जाप करने लग जाओ।

कुमार को इससे बड़ा बल मिला। वह मन्त्र का जाप करने लग गया। होम करने वाले आये और ज्योंही उसे अग्नि-कुण्ड में ढकेलना चाहा, त्योंही नमस्कार-मन्त्र के प्रभाव से अग्नि ठंडी हो गई। वहां एक सिंहासन बन गया और वे मूर्च्छित